[ISSN : 2348-2605]

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

(त्रैमासिक हिन्दी
एवं
सामाजिक विज्ञान
पत्रिका)

www.gejournal.net

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान
शोध पत्रिका
(त्रैमासिक हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान पत्रिका)

E-mail: hindires@gmail.com

हिन्दी के महिला लेखन में चेतना के स्वर : एक v/;;u

Dr. Pooja Rani

MA (Hindi), B.Ed. & Net Qualified, Ph.d. (Hindi) Nissing, Distt. Karnal (Haryana), India-132001

--x......................................

वैष्वीकरण ने नारी चेतना के क्षितिज को सबसे ज्यादा फैलाया है। विज्ञान, तकनीक, खेल, कॉरपोरेट जगत आदि कई क्षेत्रों में स्त्रियों में अपनी मेधा और श्रम द्वारा पहचान बनाई है। भारत की बेटियों ने घर के आंगन को व्यापक कर मन का आकाष बना लिया है। आज कोई बी.बी.सी. प्रमुख है तो कोई देष में और विष्व के सभी देषों में आधुनिक व्यवसायगत उल्लेखनीय कार्य कर दिख रही है और सर्वोच्च पद–प्रतिष्ठा भी पा रही हे। नारी की दृष्टि से भी इसे सकारात्मक षक्ति–प्रदायक विकास के रूप में देखा जा रहा है। एक तरह से यह कहना है कि 'पिछले पन्ने की औरतें समाज के अगले पन्ने पर जगह पा गई हैं, ज्यादा सार्थक होगा।

पुरूष भोगे और स्त्री भुगते–यह इस दषक की स्त्री को मान्य नहीं है। वह अब बंधनों के विरोध में खड़ी हो गई है। मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' में स्मिता और अमिता की बातचीत नारी के बदलते तेवर को व्यक्त करती है, ''मुझे यह पुरातन औरतनुमा छलप्रपंच पसन्द नहीं। दो टूक बात कहने का साहस हो तो मुझे से दोस्ती करवा वरना अपना रास्ता माप'' – यहां स्पष्ट रूप से लेखिका ने व्यक्त किया है कि स्त्री का षरीर उसकी अपनी मिल्कियत है। उसकी देह पर उसका अधिकार हे। वह चाहेगी तभी पुरूष उसका उपभोग कर सकता है। नासिरा षर्मा की 'षाल्मली' एक स्थान पर कहती है ''मैं पुरूष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। मेरी नजर में नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच, स्त्री की स्थिति को बदलने में है।'' यह संघर्षषील नारी, बदल गई स्थितियों में पुराने मूल्यों की पड़ताल करती है। स्वतंत्रता के बाद जब नारी अस्मिता के स्वर तेजी से उभरे तो नारी जीवन को नया आयाम मिला। इस दौर की लेखिकाओं में निरूपमा सेवती, मंजुला भगत, सूर्यबाला, नीलिमासिंह, मृणालपाण्डे आदि उल्लेखनीय हैं जिनकी रचनाओं में पारंपरिक ढाँचा टूटता नजर आया। आत्माभिव्यक्ति के साथ नारी जीवन की विभिन्न स्थितियों का वर्णन उनके लेखन में मिलता है।

'चेतना' षब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है। पाष्चात्य, विद्वान विलियम जेम्स ने 'चेतना' का अर्थ ब्वदेबपवनेदमे (कॉन्षसनेस) के रूप में स्वीकार किया है।

'चेतना' षब्द के विभिन्न अर्थों को देखने के बाद यह स्पष्ट होता है कि चेतना एक ऐसा भाव है जो मनुष्य में चैतन्य या सदैव जागरूक रहने की स्थिति निर्माण करता है।

व्यक्ति की चेतना किसी अस्पर्ष या षून्य अनुभूति से निर्मित भावना नहीं है। मनुष्य अपनी चेतन मानसिकता के कारण समाज में घटने वाली घटनाओं से षिक्षा प्राप्त करता रहता है और उसे विकसित भी करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि व्यक्ति में निहित चेतना उसके स्थायी विकास की प्रेरक षक्ति होती है। लेकिन आज भी मनुष्य में रूढ़िग्रस्ता के कारण कहीं न कहीं जड़ता और अज्ञान कम–अधिक मात्रा में स्थित होता है। इस अधोगति को जो विचार प्रवाह गति प्रधान करता है, दैदिप्यमान बनाता है, जो अपने प्रवाह से समूचे युग में नवजागरण की लहर दौड़ा देता है, वही चेतना है।

चेतना समाज–मानव और समय से जुड़ी हुई एक अनवरत प्रक्रिया है जो समस्त सृष्टि तथा सृजनात्मक एकता का धर्म है। चेतना के सामाजिक, दार्षनिक, मनौवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि अनेक पक्ष होते हैं। लेकिन इतना सुनिष्चित है कि चेतना संपूर्ण मानव जाति से संबंधित होती है। चेतना की इतनी व्याप्ति होने के कारण उसकी सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। इसके साथ ही चेतना परिवर्तनषील होने कारण उसको विषिष्ट परिभाषा में बाँधना अत्यंत कठिन कार्य होता है।

चेतना मानस की प्रमुख विषेषता है। इसे वस्तुओं, व्यवहारों का ज्ञान भी कहा जा सकता है। यह मनुष्य में सदैव कार्य करते रहने की षक्ति है, इसके सिवा मनुष्य का होना न होने के बराबर है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि चेतना मनुष्य की संवेदना, जागरूकता या अनुभूति है। यह वह षक्ति है जो मनुष्य के अस्तित्व को सदैव विकासषील बनाती है। मनुष्य के अनुभव को संवेदना को व्यक्त करने की यह एक अजोड़ षक्ति है। इसलिए मनुष्य समाज और समय के साथ चलता है, उनसे हटकर नहीं।

चेतना के कारण मनुष्य अन्य प्राणियों से अलग होता है। चेतना के कारण मनुष्य अपने आस–पास की बातों को समझता है तथा उनका मूल्यांकन करता है। मनुष्य के मस्तिष्क में निहित यह परिर्वतनकारी षक्ति होती है। यही कारण है कि इसकी कोई निष्चित सीमा निर्धारित करना अत्यंत कठिन कार्य होता है।

चेतना साहित्य सृजन का मूलतत्व है। इसके साहित्य में विविध रूप दिखाई देते हैं। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि रूपों में चेतना साहित्य में अभिव्यक्त होती है। महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में भी चेतना के विविध प्रवाह परिलक्षित होते हैं। आगे के अध्यायों में इनमें दिखाई देने वाले चेतना के विविध रूपों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

कहा जाता है कि, ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है''। मनुष्य और समाज एक ही सिक्के दो पहलू हैं। मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है किन्तु वह समाज के नियमों से बँध जाता है। मनुष्य जीवन और समाज का घनिष्ठतम

संबंध होता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज नीति–नियमों का उल्लंघन नहीं करता क्योंकि समाज उसे बहिष्कृत कर देता है। इसी कारण समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्था का यदि वह पालन न करे तो वह असामाजिक कहलाता है। इतना अवष्य है कि, मनुष्य को समाज से जुड़कर अपने अस्तित्व को पहचानने का, बनाने का अवसर प्राप्त होता है। मनुष्य समाज के बिना अपना व्यवहार नहीं कर सकता। उसको अपनी समस्याएँ पूरी करने के लिए समाज में रहना पड़ता है।''

माता–पिता को हमेषा इस बात का डर होता है कि, लोग क्या कहेंगें? हम समाज में कैसे रह पाएँगें ? इसी भय के कारण माता–पिता अनेक बार अपने पुत्र–पुत्रियों के प्रति कठोर हो जाते हैं। इतना ही नहीं, अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए वे पुत्र या पुत्री का त्याग करने में भी नहीं हिचकिचाते। इसी कारण हरेक आदमी समाज की नजरों से बचना चाहता है, क्योंकि यही समाज उसे सम्मान और प्रतिष्ठा देने वाला है। सामाजिक मान्यता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को समाज की रूढ़ मान्यताओं का, मूल्यहीन संस्कारों का, षिष्टाचारों का, नैतिक आदर्षों का पालन करना पड़ता है। समाज और व्यक्ति की दृष्टि से यह आदर्ष की स्थिति होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि, समाज मानव जीवन का अनिवार्य अंग है। सामाजिकता जितनी आसानी से प्राप्त हो जाती है, उससे छुटकारा उतनी ही कठिनाई से मिलता है। आज समाज बौद्धिक है। आज के भौतिकवादी युग ने मनुष्य को नई राहों की ओर मोड़ना प्रारंभ कर दिया है। आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति दोहरे व्यक्तित्व वाला हो चुका है। हमारी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि हम जैसे यथार्थ में होते हैं वैसे लगते नहीं। हमारी ऊपरी परत बिल्कुल भिन्न है और अन्दर से कुछ और है। मनुष्य जैसा होता है, दूसरों के समक्ष स्वतः को वैसा प्रदर्षित नहीं करता, व्यक्ति स्थिति, काल तथा अवसर के अनुसार अपने आप को, अपने स्वभाव को बदल–बदल कर सामने रखने का यत्न करता है। अर्थात् नये–नये मुखौटे धारण करने का वह यत्न करता है परंतु उसका ढोंग, आडम्बर एक–न–एक दिन बाहर आ ही जाता है। महिला उपन्यासकारों ने अपने कृतियों में सभी सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ि–परंपराओं का यथावसर चित्रण किया है। मनुष्य जीवन तथा समाज के इन सभी बातों का यथार्थ चित्रण करने का कार्य महिला–लेखिकाओं ने किया है। व्यक्ति समाज का संबंध, समाज में आये विविध बदलाव, व्यक्ति–व्यक्ति का संबंध, व्यक्ति के विविध रूप आदि को इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में अंकित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

आज समाज में जा मान्यताएँ चल रही हैं, उनमें से कुछ रूढ़ियाँ तथा परंपराएँ पुरानी हो चुकी हैं, इन परंपराओं को तोड़कर एक नये समाज की कामना अनेक महिला लेखिकाओं ने की है।

प्राचीन युग में समाज व्यवस्था का आधार जाति और धर्म रहा है। परंतु देष की स्वाधीनता के पचास साल के बाद भी हम जातिगत व्यवस्था तथा ऊँच–नीच के चक्कर में जकड़े हुए हैं। कहने के लिए तो

समाज–परिवर्तन की बात करते हैं परंतु जातिगत–व्यवस्था हमारे जीवन का हिस्सा बन चुकी हैं, इसे नहीं भूलना चाहिए। आज समाज में सड़ी–गली परंपरा, जाति तथा धर्मगत व्यवस्था को न मानकर संघर्षमयी जीवन जीने वालों की वृद्धि हो रही है तो दूसरी तरफ जातिगत व्यवस्था तथा पुरानी सड़ी–गली परंपरा के बंधनों में आज भी जकड़े हुए लोग दिखाई देते हैं। हिन्दी की महिला उपन्यासकारों ने इसे नजर अंदाज नहीं किया बल्कि उसे अपने उपन्यासों का विषय बनाकर उसे आधुनिक दृष्टिकोण से नापने का प्रयास किया है, नई दिषा देने का काम किया है।

हमारे यहाँ जातिगत व्यवस्था बनी हुई है बनाये रखी है। इसमें पूरी तरह परिवर्तन आने में अभी बहुत समय लगेगा। इस प्रकार महिला उपन्यासकारों ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में जातिगत व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया है, जो हमारे समाज पर लगा एक कलंक है। यह एक ऐसा रोग है, जो पढ़े–लिखे को भी हो जाता है। कुछ लोग मात्र इस बन्धन को तोड़ना चाहते हैं। जब चरित्रा जैसे नौजवान इन बातों को समझेंगें और इस कलंक को मिटाने का प्रयास करेंगें तब षायद समाज में परिवर्तन आने की संभावना है।

महिला उपन्यासकारों ने अपनी इन कृतियों में इस व्यवस्था का यथातथ्य चित्रण तो किया है परंतु इस पर चिंता भी जाहिर की है। महिला उपन्यासकारों का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में आधुनिक दिखाई देता है। वे जातिगत तथा धर्मगत बन्धनों को तोड़ना चाहती है। इसी कारण इनके पात्र इस जातिगत तथा धर्मगत व्यवस्था के विरोध में विद्रोही रूप में नजर आते हैं। इनके निम्न जातीय पात्र भी संघर्षषील दिखाई देते हैं और अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। समाज परिवर्तन की दिषा में यह एक नया कदम कहा जा सकता है।

प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। चित्रा मुदगल के षब्दों में ''नारी चेतना की मुहिम स्वयं स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने का आन्दोलन है कि मैं भी मनुष्य हूँ और अन्य मनुष्यों की तरह समाज में सम्मानपूर्वक रहने की अधिकारी हूँ।'' उनका 'आवा' उपन्यास स्त्री चेतना को अभिव्यक्ति देता समय से मुठभेड़ की पड़ताल है। मैत्रेयी पुष्पा की 'फैसला' कहानी स्त्री का वह तेवर और पहचान है जो पुरूष वर्चस्व के आंतक तले कभी अभिव्यक्ति नहीं पा सका, लेकिन अब उभर रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति में विज्ञापन की चकाचौंध में नारी स्वतंत्र हुई या उसकी पहचान का संकट पैदा हो गया है? जैसे प्रष्न आज उठाए जा रहे है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के इस देष में आने के बाद से विज्ञापनों, फिल्मों– टी.वी. आदि पर स्त्री देह का खुलापन अधिक बढ़ गया है।

आज नारी अपनी 'ग्लास इमेज' को तोड़कर 'पावर वूमेन' बनती जा रही है। इस पितृसत्तात्मक समाज में स्वयं स्त्री अपने को पुरूष की नजर से देखने को मजबूर है। जो पुरूष करता था वही, वह भी कर रही है। कुआरे मातृत्व, गर्भपात, यौनषुचिता आदि प्रष्न समाज को उद्वेलित कर रहे है। इन विषयों पर महिला

लेखिकाओं ने बदलते समय के अनुकूल चुनौती दी है। कुसुम अंसल की 'मोहरे', 'जंगल', सुधा अरोड़ा का 'यह रास्ता जंगल को जाता है', चन्द्रकांता का 'अंतिम साक्ष्य', मीरां सीकरी का 'गलती कहा', कमल कुमार का 'हमबरगट', मेहरून्निसा परवेज का 'अकेला पलाष' इसके बाद की पीढ़ी में कात्यायनी, लवलीन, अलका सरावगी, क्षमा षर्मा, जया जादवानी आदि की रचनाएं समाज–परिवर्तन का दिषा–संकेत करतीं अपना महत्व ररखती है।

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा की मानसिकता के विरूद्ध रचे गये कथा, पात्र, संवाद क्या वास्तविकता में आधुनिकता के मिथक है? क्या हम अपनी वैवाहिकी संस्थाओं के संस्कारों को ही आधुनिकीकरण के मुखौटे में छिपाकर अपने आपको ही धोखा तो नहीं दे रहे है? विवाह, परिवार, दाम्पत्य, मातृत्व सब पर जैसे प्रष्नचिह्न लग गए हैं।

'स्वतंत्रता' स्त्री–विमर्ष में चर्चा का प्रिय और जरूरी विषय रहा है। यहां फिर से यह सवाल उठता है कि 'स्वतंत्रता' को हम स्त्री के सन्दर्भ में किस प्रकार परिभाषित करेंगें? 'आवष्यकता स्वतन्त्रता की है। सामाजिक या राजनीतिक स्वतन्त्रता की नहीं, बल्कि दैहिक और मानसिक स्वतन्त्रता की है। स्वतन्त्रता चाहिए उस रूढ़िवादी समाज के बन्धनों से जो स्त्री के भीतर की विद्रोही आवाज सुनने से ही इनकार करता है। स्वतन्त्रता चाहिए सामाजिक सोच की, उस मानसिक बानक से ही जो स्त्री के समूचे अस्तित्व को ही फसाये रखता है। स्त्री का मन विद्रोह कर उठता है और वह सदियों पुराने रिवाजों और परम्पराओं को पीछे छोड़ देती है, लेकिन स्त्री अभी भी अपने ही खोल से, वफादारी और पारम्परिक स्त्रीत्व की कैद से बाहर नहीं निकल पायी है। उस दिन की हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगें जब कविता, स्त्रीत्व और स्वतन्त्रता साथ–साथ चलते रहकर समाज का तीसरा नेत्र खोल देंगें।''

सच तो यह है कि आज तक हम राजनीतिक–सामाजिक स्वतन्त्रता की ही व्याख्या नहीं कर सके हैं और स्त्री स्वतन्त्रता की बात उसी परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। निरपेक्ष स्वतन्त्रता जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। स्वतन्त्रता का मूल अभिप्राय है 'निर्णय की स्वतन्त्रता' और स्त्री–स्वतन्त्रता का रूप क्या होगा, यह स्वयं स्त्रियों को ही तय करना है, यह निर्णय कुछ 'विषिष्ट' महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता है।

मूलभूत समस्याओं को दकियानूसी मानकर, फैषनीय सोच के प्रभाव से बाहरी समस्याओं से जूझते रहना कहीं पलायनवादी प्रवृत्ति तो नहीं ? धर्म, परम्परा, संस्कार–संस्कृति को चुनौती देने वाली मानसिकता का आहवान अगर आधुनिक है तो फिर क्यूं आज के इक्कीसवीं सदी में भारतीय समाज में महिला की स्थिति में अंतर नहीं हो सका ? लगभग दो दषकों से कन्या भ्रूण परीक्षण की सुविधा के दुरूपयोग ने आज महिला की समाज में वास्तविक स्थिति को दिखाते हुए गंभीर प्राकृतिक असंतुलन को निर्मित कर दिया है। लेखन के सामने उभरता प्रष्न यहां समाज की पुत्र कामना की मानसिकता को झकझोरने की है। वस्तुस्थिति को

सामने रखकर बेटी की उज्जवल संभावनाओं को खोलने का है। अर्थात् समाज में गहराई तक व्याप्त पुरूष प्रधानता के विचार को गहराइयों में जाकर क्रमषः मिटाना है। इस दिषा में मृणाल पाण्डे, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, मन्नू भण्डारी, चित्रा मृंदगल, ममता कालिया, मेहरून्निसा परवेज, उषा प्रियवंदा, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, अनामिका, अलका सरावगी, प्रभा खेतान आदि प्रमुख प्रतिबद्ध महिला रचनाकारों ने लिखा है। इनके सृजन सरोकार, सीापित संस्कारों की मानसिकता को जहाँ चुनौती देते हैं, वहीं उसी तीव्रता से भविष्य की संभावित राहों की ओर भी इषारा करते हैं।

वर्तमान परिस्थितियों में महिला लेखन के लिए आवष्यक हो गया है कि आधुनिकता के नाम पर महिमामण्डित मूल्यों को नकार कर जमीनी हकीकत को आकार दें ताकि उसमें स्त्री प्रगति की संकल्पनाएँ, संभावनाएँ रचती—बसती चली जाए। परम्परा और आधुनिकता ने औरतों को जो जगह दी है उसमें अन्तर इतना है कि परम्परा में न औरतें दीखतीं थी, न उनकी पीड़ा। परम्परा में पीड़ा भोगने में ही बड़प्पन का अहसास कराया गया। आधुनिकता में यह पीड़ा नहीं है, भ्रम है— अपने मन का कर पाने का। आधुनिकता में महिलाओं को पहले से थोड़ी ज्यादा जगह जरूर मिली है परन्तु वे उपेक्षा और अन्याय की भी ज्यादा षिकार हो रही है। फिर भी वे अपनी—अपनी परिस्थति और सामर्थ्य के हिसाब से लड़ रही हैं। जिन विद्रोह और संघर्ष की परम्परा को हाषिये पर डाल दिया था, अतीत के उन्हीं औजारों से आज की महिलाएं लेखन कर रही है।

नासिरा षर्मा के अनुसार इस सदी की औरत की आवाज बराबरी की माँग और इंसान की तरह जीने की स्वतन्त्रता के लिए जितनी भी मुखर हुई हो, तो भी अंतरध्वनि इस स्वर की बड़े गहरे रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करती है कि इस विकास की दौड़ में, स्वतंत्रता की इस ललक में नैतिकता का मापदंड क्या होगा और इसको लेकर चलने वाली महिलाओं को जड़ एवं रूढ़िवादी कहने वाले छद्म बुद्धिजीवियों एवं नारी समर्थकों को अपने आचरण से बताना पड़ेगा कि वास्तविक प्रगतिषीलता किसको कहते हैं, उनका अर्थ पतन नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों की गरिमा है, जो रिष्तों की तिजारत से अलग एक ठोस जमीन देती है और यही इस षताब्दी की औरत की आवाज होनी चाहिए।

चित्रा मुदगल का उपन्यास आधा स्त्री विमर्ष का वृहद लेख है। इस उपन्यास में दलित जीवन व दलित विमर्ष के कई कथानक अनायास ही आ गए है। इस रूप में इसे स्त्री विमर्ष के साथ—साथ दलित विमर्ष का महाकाव्य भी कह सकते हैं। इसे लिखने की प्रेरणा चित्रा मुदगल को मुम्बई में लिए गए अपने युवा जीवन से मिली इस विचार को मजबूती मुम्बई ने दी और परिपक्वता हैदराबाद से मिली श्रमिकों के षहर कोलकता में बैठकर वह लिखा गया तो दिल्ली ने आधार कैप का काम किया। आवां की सर्जक की कोषिष और आकांष कुछ—कुछ 'जिन्दगीनामा' जैसा ही इतिहास बनकर जन सामान्य (स्त्रियां खासकर) में बहने, पनपने, फेलने और सांस्कृतिक पुख्तापन के साथ जिन्दा रहने की है।

दलित पवार और ब्राह्मण नमिता के पारस्परिक आकर्षण के माध्यम से 'आवां' में दलित विमर्ष का मामला उठा है तो दूसरी और नमिता के पिता देवी षंकर की बिनब्याती पुत्री किषोरी बाई के माध्यम से परकीया प्रेम को भी पनपता दिखाया गया है।

चित्रा मुद्गल जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय परिवार की महिलाएँ हों, दलाल मैडमें हो, संजय बहनोई, अन्ना, पवार किरपू दुसाध जैसों का रहन–सहन हो, सबके बीच में हैं आज की स्त्रियां, स्त्रियां ही स्त्रियां उनकी जीवन स्थितियां, उनके हाई समझौते, उनके पतन, उनके उत्कर्ष, उनकी नियति, उनके स्वप्न, मोह, मोहभंग और उनके फेसले। कुल मिलाकर हर तरह से उनके जीवन 'आवां' के फोकस में हैं। इसलिए यह उपन्यास स्त्री विमर्ष का उपन्यास है।

षाल्मली नासिरा षर्मा का एक ऐसा विषिष्ट उपन्यास है जिसकी जमीन पर नारी का एक अलग और नया रूप उभरा गया है। षाल्मली एक रूढ़ियों ने बँधी नारी न होकर परम्परागत नायिका के बंधन से मुक्त होती हुई, ये अहसास कराती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति को सरोकार चाहे जितनी गहरा हो उसे तोड़ दिये जाने के प्रति मौन स्वीकार नहीं होना चाहिए।

नासिरा जी की नायिका आधुनिक नारी के समस्त गुण लिये हुए है। वह एक बड़ी अफसर है लेकिन फिर भी बेहद सामान्य है। सभी परिवार वालों से उसके रिष्ते सच के नजदीक हैं। वह एक आम भारतीय नारी की यथार्थ मूर्ति है। लेकिन 'षाल्मली' दया और करूणा में डूबी अश्रू बहाने वाली नारी का प्रतीक भी नहीं है जिसे पुरूष सज्ञा की गुलामी में सब कुछ खो देना पड़ता है। वह सामान्य होते हुए भी असाधारण है और चुनौती के तेवर रखती है। नारी को विवषता व स्थिति को उनकी में लाइने क्या खूब व्यक्त करती है।

मैं केवल एक सूखा वृक्ष भर रह गई हूँ,

न फल, न फूल, न षाख, न पत्ती, न छाया, न ठंडक

ऐसे सूखे वृक्ष की षरण में भला कौन आना पसन्द करेगा धरती ने तो जैसे अपने स्त्रोत समेट लिए हैं।

हिन्दी की सबसे लोकप्रिय लेखिकाओं में से एक मृदुला गर्ग महिला तथा बच्चों के हित में समाज सेवा के लिए काम करती रही है। उनका उपन्यास 'चितकोबरा' नारी पुरूष के संबंधों में षरीर को मन के समांतर खड़ा करने और इस पर एक नारीवाद या पुरूष–प्रधानता विरोधी दृष्टिकोण रखने के लिए काफी चर्चित और विवादास्पद रहा था। ये 'इंडिया टुडे' के हिन्दी संस्करण में लगभग तीन साल तक कटाक्ष नाम स्तंभ लिखा है। जो अपने तीखे व्यंग्य के कारण खूब चर्चा में रहा। वे संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलंबिया विष्वविद्यालय में आयोजित (1990) एक सम्मेलन में महिलाओं के प्रति भेदभाव विषय पर व्याख्यान दे चुकी

है। महिला चेतना के स्वर इनके काव्य में पूर्ण रूप से मुखरित होते हैं। नारी विमर्ष की एक और प्रखर चिंतक प्रभा खेतान का चर्चित उपन्यास स्त्री के षोषण, उत्पीड़न और संघर्ष का जीवन्त दस्तावेज है।

इनको नायिका परत दर परत स्त्री जीवन के उन पक्षों को उघाडती चलती है जिसको पुरूष समाज औरत की स्वाभाविक नियति मानता रहा है। इस प्रक्रिया में वह हमें स्त्री की युगों–युगों से संचित पीड़ा से रू–ब–रू कराती है।

प्रभा जी दिखाती है कि पराम्परा के नाम पर घर में सुरक्षित रहने वाली प्रिया कैसे घर को चारदीवारी में ही यौन षोषण का षिकार हो जाती है और जड़ संस्कारों में जकड़ा उसका पति भी उसे मानवोचित सम्मान नहीं दे पाता। इसके बावजदू भी प्रिया हार न मानकर अपनी एक अलग पहचान बनाती है। मनुष्य के रूप में अपनी जिजीविषा और स्त्री के रूप में अपनी संवेदनषीलता को जीती हुई वह अपना स्वतंत्र तथा सफल व्यवसाय स्थापित करती है। लेखिका दिखाती है कि कैसे एक साधारण सी समाज की सतायी हुई नायिका घर के सीमित दायरे से स्वयं को मुक्त करके अपने सपनों को सुदूर क्षितिज तक विस्तृत करती है।

इस प्रकार एक ओर महिला लेखन ने वैष्वीकरण के प्रभाव से बदलते सामाजिक मूल्यों और उसके विघटन को रेखांकित किया है तो दूसरी ओर उसका सकारात्मक रूप भी सषक्त रूप से उभर कर आया है। इस तरह महिला लेखन बिना किसी खाचें में बंधे अबाधगति से, समय के तेवर की चुनौती को स्वीकार करते हुए, भविष्य की ओर अग्रसर है। सांस्कृतिक विघटन से प्रभावित मानव–मूल्यों को सुरक्षित रखने और संजोने–सवारने का दायित्व भी महिला रचनाकार के लिए एक चुनौती है, जिसे उसने समझा है।

नासिरा षर्मा जी निम्नवर्गीय तथा कामका जी औरतों की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करती है। उन्होंने औरत के लिए 'औरत' नाम पुस्तक में कामगार स्त्रियों के संदर्भ में लिखा है। इनके लेखों में जीवन की आंच है और आस भी कि स्वयं नारी अपने प्रति हुए अत्याचारों और षोषण का रूख कब बदलेगी।

सन्दर्भः

माधुरी षोनटक्के षास्त्रीः महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में चतना के प्रवाह पृष्ठ सं. 12, 13, 48, 57, 58।

प्रभा खेतान : छिन्नमस्ता।

नासिरा षर्मा : औरत के लिए औरत।

मृदुला गर्ग : कठगुलाब।

अनामिका : मन मांझने की जरूरत।

नासिरा षर्मा : षाल्मली।

मृदुला सिन्हा : मात्र देह नहीं है औरत।

चित्रा मुद्गल : आवां।

मृणाल पाण्डे : परिधि पर स्त्री।